१५

धर्म की परख का आधार

अध्यात्म और विज्ञान, दोनों ही मानव जीवन के मुख्य प्रश्न हैं और बहुत गहरे हैं। जीवन के साथ दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी आज दोनों को भिन्न भूमिकाओं पर खड़ा कर दिया गया है। अध्यात्म को आज कुछ विशेष क्रियाकांडों एवं तथाकथित प्रचलित मान्यताओं के साथ जोड़ दिया गया है और विज्ञान को सिर्फ भौतिक अनुसन्धान एवं जगत् के बहिरंग विश्लेषण तक सीमित कर दिया गया है। दोनों ही क्षेत्रों में आज एक वैचारिक प्रतिबद्धता आ गई है, इसलिए एक विरोधाभास-सा खड़ा हो गया है, और इस कारण कहीं-कहीं दोनों को परस्पर प्रतिद्वन्द्वी एवं विरोधी भी समझा जा रहा है। आज के तथाकथित धार्मिक जन विज्ञान को सर्वथा झूठा और गलत बता रहे हैं और विज्ञान भी बड़ी बेरहमी के साथ धार्मिकों की तथाकथित अनेक धारणाओं को झकझोर रहा है।

अपोलो ८, अभी-अभी चन्द्रलोक की परिक्रमा करके आ गया है, वहाँ के चित्र भी ले आया है। अपोलो ८, के तीनों अमरीकी अंतरिक्ष यात्रियों ने आँखों देखी स्थिति बताई हैं कि—वहाँ पहाड़ों और गड्ढों से व्याप्त एक सुनसान वीरान धरातल है और उनकी घोषणा को रूस जैसे प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र के वैज्ञानिकों ने भी सत्य स्वीकार किया है। परन्तु, हमारा धार्मिक वर्ग एक सिरे से दूसरे सिरे तक आज इन घोषणाओं से काफी चिन्तित हो उठा है। मेरे पास बाहर से अनेक पत्र आए हैं, बहुत से जिज्ञासु प्रत्यक्ष में भी मिले हैं—सबके मन में एक ही प्रश्न तरंगित हो रहा है—"अब हमारे शास्त्रों का क्या होगा? हमारे शास्त्र तो चन्द्रमा को एक महान् देवता के रूप में मानते हैं, सूर्य से भी लाखों मील ऊँचा[1] चन्द्रमा का स्फटिकरत्नों का[2] विमान है, उसपर सुंदर वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत देव-देवियाँ हैं।[3] चन्द्र विमान एक लाख योजन ऊँचे मेरु पर्वत के चारों ओर भ्रमण करता है।[4] चन्द्र में जो काला धब्बा दिखाई देता है, वह मृग का चिन्ह है। हमारे शास्त्रों के इन सब वर्णनों का अब क्या होगा? वहाँ जाने वाले तो बताते हैं, चित्र दिखाते हैं कि चन्द्र में केवल पहाड़ और खड्डे हैं, किसी यात्री से किसी देवता की मुलाकात भी वहाँ नहीं हुई, यह क्या बात है? ये वैज्ञानिक झूठे हैं या शास्त्र? शास्त्र झूठे कैसे हो सकते हैं? ये भगवान् की वाणी है, सर्वज्ञ-वाणी है।"

विज्ञान एवं अध्यात्म का क्षेत्र :

मैं सोचता हूँ, धार्मिक के मन में आज जो यह अकुलाहट पैदा हो रही है, धर्म के प्रतिनिधि तथाकथित शास्त्रों के प्रति उसके मन में जो अनास्था एवं विचिकित्सा का ज्वार उठ रहा है, उसका एक मुख्य कारण है—वैचारिक प्रतिबद्धता! कुछ परम्परागत रूढ़ विचारों के साथ उसकी धारणा जुड़ गई है, कुछ तथाकथित ग्रन्थों और पुस्तकों को उसने धर्म का प्रतिनिधि शास्त्र समझ लिया है, यह न तो इसका ठीक तरह बौद्धिक विश्लेषण कर सकता है और न ही विश्लेषण प्राप्त सत्य के आधार पर उनके मोह को ठुकरा सकता है। वह बार-बार

---

१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, १८।३   २. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ज्योतिष चक्राधिकार, ८

३. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २०।२ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ८.   ४. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २०।१४

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

दुहराई गई धारणा एवं रूढ़िगत मान्यता के साथ बँध गया है, प्रतिबद्ध हो गया है। बस, यह प्रतिबद्धता—आग्रह ही उसके मन की विचिकित्सा का कारण है।

शास्त्र की चर्चा करने से पहले एक बात हमें समझ लेनी है कि अध्यात्म और विज्ञान राम-रावण जैसे कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, दोनों ही विज्ञान हैं, एक आत्मा का विज्ञान है, तो दूसरा प्रकृति का विज्ञान है। अध्यात्म-विज्ञान के अन्तर्गत आत्मा के शुद्धाशुद्ध स्वरूप, बन्धमोक्ष, शुभाशुभ परिणतियों का ह्रास-विकास आदि का विश्लेषण आता है। और विज्ञान, जिसे मैं प्रकृति का विज्ञान कहना ठीक समझता हूँ, इसमें हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन, इनका संरक्षण-पोषण एवं चिकित्सा आदि, तथा प्रकृति का अन्य मार्मिक विश्लेषण समाहित होता है। दोनों का ही जीवन की अखण्ड सत्ता के साथ सम्बन्ध है। एक जीवन की अन्तरंग धारा का प्रतिनिधि है, तो एक बहिरंग धारा का। अध्यात्म का क्षेत्र मानव का अन्तःकरण, अन्तश्चैतन्य एवं आत्मतत्त्व रहा है, जबकि आज के विज्ञान का क्षेत्र प्रकृति के अणु से लेकर विराट् खगोल-भूगोल आदि का प्रयोगात्मक अनुसन्धान करना है, इसलिए वह हमारी भाषा में बहिरंग ज्ञान है, जबकि अन्तरंग चेतना का विवेचन, विशोधन एवं ऊर्ध्वीकरण करना अध्यात्म का विषय है, वह अन्तरंग ज्ञान है।

इस दृष्टि से विज्ञान व अध्यात्म में प्रतिद्वन्द्विता नहीं, अपितु पूरकता आती है। विज्ञान प्रयोग है, अध्यात्म योग है। विज्ञान सृष्टि की, परमाणु आदि की चमत्कारी शक्तियों का रहस्य उद्घाटित करता है, प्रयोग द्वारा उन्हें हस्तगत करता है, और अध्यात्म उन शक्तियों का कल्याणकारी उपयोग करने की दृष्टि देता है। मानव-चेतना को विकसित, निर्भय एवं निर्द्वन्द्व बनाने की दृष्टि अध्यात्म के पास है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों का कब, कैसे, कितना और किसलिए उपयोग करना चाहिए, इसका निर्णय अध्यात्म देता है, वह भौतिक प्रगति को विवेक की आँख देता है—फिर कैसे कोई विज्ञान और अध्यात्म को विरोधी मान सकता है?

हमारा प्रस्तुत जीवन केवल आत्ममुखी होकर नहीं टिक सकता है और न केवल बहिर्मुखी ही रह सकता है। जीवन की दो धाराएँ हैं—एक बहिरंग, दूसरी अंतरंग। दोनों धाराओं को साथ लेकर चलना, यही तो जीवन की अखण्डता है। बहिरंग जीवन में विश्रृंखलता नहीं आए, द्वन्द्व नहीं आए, इसके लिए अंतरंग जीवन की दृष्टि अपेक्षित है। अन्तरंग जीवन आहार-विहार आदि के रूप में बहिरंग से, शरीर आदि से, सर्वथा निरपेक्ष रहकर चल नहीं सकता, इसलिए बहिरंग का सहयोग भी अपेक्षित है। भौतिक और आध्यात्मिक, सर्वथा निरपेक्ष दो अलग-अलग खण्ड नहीं हो सकते, बल्कि दोनों को अमुक स्थिति एवं मात्रा में साथ लेकर ही चला जा सकता है, तभी जीवन सुन्दर, उपयोगी एवं सुखी रह सकता है। इस दृष्टि से मैं सोचता हूँ तो लगता है—अध्यात्म-विज्ञान और भौतिक-विज्ञान दोनों ही जीवन के अंग हैं, फिर इनमें विरोध और द्वन्द्व की बात क्या रह जाती है? यही आज का मुख्य प्रश्न है!

शास्त्र बनाम ग्रन्थ :

भौतिक विज्ञान के कुछ भूगोल-खगोल सम्बन्धी अनुसन्धानों के कारण धर्मग्रन्थों की कुछ मान्यताएँ आज गड़बड़ा रही हैं, वे असत्य सिद्ध हो रही हैं और उन ग्रन्थों पर विश्वास करने वाला वर्ग लड़खड़ा रहा है, अनास्था से दिग्-भ्रान्त हो रहा है। सैकड़ों वर्षों से चले आए ग्रन्थों और उनके प्रमाणों को एक क्षण में कैसे अस्वीकार कर लें और कैसे विज्ञान के प्रत्यक्षसिद्ध तथ्यों को झुठलाने का दुस्साहस कर लें। बस, यह वैचारिक प्रतिद्वन्द्विता का संघर्ष ही आज धार्मिक मानस में उथल-पुथल मचाए जा रहा है। जहाँ-जहाँ पर परम्परागत वैचारिक प्रतिबद्धता, तर्कहीन विश्वासों की जड़ता विजयी हो रही है, वहाँ-वहाँ विज्ञान को असत्य, भ्रामक और सर्वनाशी कहने के सिवा, और कोई चारा भी नहीं है। मैं समझता हूँ, इसी भ्रान्ति के कारण विज्ञान को धर्म का विरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी मान लिया गया है, और धार्मिकों की इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्ध प्रतिबद्धता एवं घृणा के उत्तर में नई दिशा के उग्र विचारकों ने धर्म को एक मादक अफीम करार दे दिया है। पाखण्ड और असत्य का प्रतिनिधि बता दिया है।

यदि हम संतुलित होकर समझने-सोचने का प्रयत्न करें, तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि तथाकथित धर्मग्रन्थों की मान्यता के साथ विज्ञान के अनुसन्धान क्यों टकरा रहे हैं? इस सन्दर्भ में दो बातें हमें समझनी होंगी—पहली यह कि शास्त्र की परिभाषा क्या है? उसका प्रयोजन और प्रतिपाद्य क्या है? और, दूसरी यह कि शास्त्र के नाम पर चले आ रहे प्रत्येक ग्रन्थ, स्मृति, पुराण और अन्य संदर्भ पुस्तकों को अक्षरशः सत्य मानें या नहीं?

ग्रन्थ और शास्त्र में भेद :

सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिए कि शास्त्र एक बहुत पवित्र एवं व्यापक शब्द है, इसकी तुलना में ग्रन्थ का महत्त्व बहुत कम है। यद्यपि शब्दकोष की दृष्टि से ग्रन्थ और शास्त्र को पर्यायवाची शब्द माना गया है, किन्तु व्याकारण की दृष्टि से ऐसा नहीं माना जा सकता। कोई भी शब्द किसी दूसरे शब्द का सर्वथा पर्यायवाची नहीं हो सकता, उनके अर्थ में अवश्य ही मौलिक अन्तर रहता है। शास्त्र और ग्रन्थ को भी मैं इसी प्रकार दो अलग-अलग शब्द मानता हूँ।

शास्त्र का सम्बन्ध अन्तर् से है, सत्यं, शिवं, सुन्दरं की साक्षात् अनुभूति से है, स्व-पर कल्याण की मति-गति-कृति से है, जबकि ग्रन्थ के साथ ऐसा नियम नहीं है। शास्त्र सत्य के साक्षात् दर्शन एवं आचरण का उपदेष्टा होता है, जबकि ग्रन्थ इस तथ्य के लिए प्रतिनियत नहीं है। शास्त्र और ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह विवेक यदि हमारी बुद्धि में जग गया है, तो फिर विज्ञान और अध्यात्म में, विज्ञान और धर्म में तथा विज्ञान और शास्त्र में कोई टकराहट नहीं होगी, कोई किसी को असत्य एवं सर्वनाशी सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करेगा।

धर्मग्रन्थों के प्रति, चाहे वे जैन सूत्र हैं, चाहे स्मृति और पुराण हैं, आज के बुद्धिवादी वर्ग में एक उपहास की भावना बन चुकी है, और सामान्य-श्रद्धालु वर्ग में उनके प्रति अनास्था पैदा हो रही है। इसका कारण यही है कि हमने शास्त्र की मूल मर्यादाओं को नहीं समझा, ग्रन्थ का अर्थ नहीं समझा और संस्कृत, प्राकृत में जो भी कोई प्राचीन कहा जानेवाला ग्रन्थ मिला, उसे शास्त्र मान बैठे, भगवद्वाणी मान बैठे, और गले से खूब कस कर बाँध लिया कि यह हमारा धर्म ग्रन्थ है, यह ध्रुव सत्य है, इसके विपरीत जो कुछ भी कोई कहता है, वह झूठ है, गलत है।

कहते हैं कि सऊदी अरब में सबसे पहले जब टेलीफोन के तार की लाइन डाली जा रही थी, तो वहाँ धर्मगुरु मौलवी लोगों ने बड़ा भारी विरोध किया। धार्मिक जनता को भड़काया—यह तो शैतान का काम है, कुरान शरीफ के हुक्म के खिलाफ है। वादविवाद उग्र हो चला, इधर-उधर उत्तेजना फैलने लगी, तो वहाँ के तत्कालीन बुद्धिमान बादशाह इब्न सऊद ने फैसला दिया कि—"इसकी परीक्षा होनी चाहिए कि दरअसल ही यह शैतान का काम है या नहीं। इसके लिए दो मौलानाओं को नियत किया गया कि वे क्रमशः टेलीफोन पर कुरान की आयतें पढ़ें। यदि शैतान का काम होगा, तो वे पवित्र आयतें तार से उस पार सुनाई नहीं देंगी, और यदि सुनाई दीं, तो वह शैतान का काम नहीं होगा।" आप जान सकते हैं, क्या प्रमाणित हुआ? वही प्रमाणित हुआ, जो प्रमाणित हो सकता था। सत्य के समक्ष भ्रान्त धारणाओं के दावे कब तक टिक सकते हैं?

धर्मग्रन्थों के प्रति इस प्रकार का जो विवेकहीन बँधा-बँधाया दृष्टिकोण है, वह केवल भारत को ही नहीं, बल्कि संपूर्ण धार्मिक विश्व को जकड़े हुए है। यह सब कब से चला आ रहा है, कहा नहीं जा सकता। ग्रन्थों से चिपटे रहने की इस जड़ता ने कितने वैज्ञानिकों को मौत के घाट उतरवाया, कितनों को देश-त्याग करवाया? यह इतिहास के पृष्ठों पर आज भी पढ़ा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ : संकलना मात्र :

मानव मस्तिष्क में विचारों की यह प्रतिबद्धता ग्रन्थ ने ही पैदा की है। ग्रन्थ का अर्थ ही है—ग्रन्थि! गाँठ! जैन भिक्षु को, श्रमण को निर्ग्रन्थ कहा गया है। अर्थात् उसके भीतर में मोह, आसक्ति आदि की कोई गाँठ नहीं होती, ग्रन्थि नहीं होती। गाँठ तब डाली जाती है, जब कुछ जोड़ना होता है, संग्रह करना होता है। कुछ इधर से लिया, कुछ उधर से लिया, गाँठ डाली, जुड़ गया, या जोड़ लिया, और गाँठ लगाई—इस प्रकार लेते गए, जोड़ते गए और ग्रन्थ तैयार होते गए। ग्रन्थ शब्द के इसी भाव को हिन्दी की 'गूँथना' क्रिया व्यक्त करती है। माली जब फूलों को धागे में पिरोता है, तब एक फूल लेता है, गाँठ डाल लेता है, फिर दूसरा फूल लेता है और फिर गाँठ डाल लेता है—इस प्रकार पिरोता जाता है, गाँठें डालता जाता है और माला तैयार हो जाती है। बिना गांठ डाले माला तैयार नहीं होती। इसी प्रकार विचारों की गाँठें जोड़े बिना ग्रन्थ भी कैसे तैयार होगा? इसका अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ के लिए मौलिक चिंतन की अपेक्षा नहीं रहती, वह तो एक संकलना मात्र है, विचारों एवं मान्यताओं के मनकों की माला है, संगृहीत विचारों की गठरी है। शास्त्र के सम्बन्ध में यह बात नहीं हो सकती।

शास्त्र : सत्य का साक्षात् दर्शन :

शास्त्र, सत्य का साक्षात् दर्शन होता है। क्योंकि सत्य सदा अखण्ड, संपूर्ण एवं समग्र मानव चेतना को स्पर्श करने वाला होता है। हमारी संस्कृति में 'सत्य' के साथ 'शिव' संलग्न रहता है। सत्य के दर्शन में सृष्टि की समग्र चेतना के कल्याण की छवि प्रतिबिम्बित रहती है। भौतिक विज्ञान भी सत्य का उद्‌घाटन करता है, किन्तु उसके उद्‌घाटन में केवल बौद्धिक स्पर्श होता है, समग्र चैतन्य की शिवानुभति का आधार नहीं होता, इसीलिए मैं उसे धर्मशास्त्र की सीमा में नहीं मान सकता।

शास्त्र के सम्बन्ध में हमारी यह भी एक धारणा है कि शास्त्र आर्ष वाणी अर्थात् ऋषि की वाणी है। यास्क ने ऋषि की परिभाषा की है, सत्य का साक्षात्‌द्रष्टा, ऋषि होता है—**ऋषिर्दर्शनात्**।[1] हर साधक ऋषि नहीं कहलाता, किन्तु अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा और तर्कशुद्ध ज्ञान के द्वारा जो सत्य की स्पष्ट अनुभूति कर सकता है, वही वस्तुतः ऋषि है। इसलिए वेदों में ऋषि को मंत्रद्रष्टा के रूप में अभिहित किया गया है। हाँ, तो मैं कहना यह चाहता हूँ कि भारत की वैदिक एवं जैन परम्परा में आर्षवाणी का अर्थ साक्षात् सत्यानुभूति पर आधारित शिवत्व का प्रतिपादक मौलिक ज्ञान होता है। शास्त्र का उपदेष्टा आँख मूँद कर उधार लिया हुआ शिवत्वशून्य ज्ञान नहीं देता। उसका सर्वजन हिताय उपदेश अन्तःस्फूर्त निर्मल ज्ञान के प्रवाह से उद्‌भूत होता है, जिसका सम्बन्ध सीधा आत्मा से होता है। आत्मा के अनन्त ज्ञान, दर्शन स्वरूप आलोक को व्यक्त करना एवं आत्मस्वरूप पर छाई हुई विभाव-परि- णतियों की मलिनता का निवारण करना—यही आर्षवाणी का मुख्य प्रतिपाद्य होता है।

जैन-परम्परा में महान् प्रतिनिधि आगमवेत्ता आचार्य जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण से जब पूछा गया कि शास्त्र किसे कहते हैं? तो उन्होंने बताया—

"सासिज्जए तेण तहिं वा नेयमायावतो सत्थं।"[3]

१. निरुक्त २।११
२. साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः।—निरुक्त १।२०
३. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा १३८४
शासु अनुशिष्टौ शास्यते ज्ञेयमात्मा वाऽनेनास्मादस्मिन्निति वा शास्त्रम्—टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसके द्वारा यथार्थ सत्य रूप ज्ञेय का, आत्मा का परिबोध हो एवं आत्मा का अनुशासन किया जा सके, वह शास्त्र है। शास्त्र शब्द शास् धातु से बना है, जिसका अर्थ है—शासन, शिक्षण, उद्बोधन! अतः शास्त्र का अर्थ हुआ—जिस तत्त्वज्ञान के द्वारा आत्मा अनुशासित होती है, उद्बुद्ध होती है, वह तत्त्वज्ञान शास्त्र है। आचार्य जिनभद्र की यह व्याख्या उनकी स्वतन्त्र कल्पना नहीं है, बल्कि इसका आधार जैन आगम है। आगम में भगवान् महावीर की वाणी का यह उद्घोष हुआ है कि—"जिसके द्वारा आत्मा जागृत होती है, तप, क्षमा एवं अहिंसा की साधना में प्रवृत्त होती है, वह शास्त्र है।"

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन में चार बातें दुर्लभ बताई गई हैं—**"माणुसत्तं सुईसद्धा, संजमम्मि य वीरियं"**[1] अर्थात् मनुष्यत्व, शास्त्रश्रवण, श्रद्धा और संयम में पराक्रम-पुरुषार्थ! आगे चलकर बताया गया है कि श्रुति अर्थात शास्त्र कैसा होता है?—**"जं सोच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं"**[2]—जिसको सुनकर साधक का अन्तर्मन प्रतिबुद्ध होता है, उसमें तप की भावना जागृत होती है और फलतः इधर-उधर बिखरी हुई अनियन्त्रित उद्दाम इच्छाओं का निरोध किया जाता है। इच्छा निरोध से संयम की ओर प्रवृत्ति होती है, क्षमा की साधना में गतिशीलता आती है—वह शास्त्र है।

इस संदर्भ में इतना और बता देना चाहता हूँ कि 'खंति' आदि शब्दों की भावना बहुत व्यापक है—इसे भी समझ लेना चाहिए। क्षमा का अर्थ केवल क्रोध को शान्त करने तक ही सीमित नहीं है, अपितु कषायमात्र का शमन करना भी है। जो क्रोध का शमन करता है, मान का शमन करता है, माया और लोभ की वृत्तियों का शमन करता है, वही सच्चा 'क्षमावान' है। 'क्षमा' का मूल अर्थ 'समर्थ' होना भी है, जो कषायों को विजय करने में सक्षम अर्थात् समर्थ होता है, जो क्रोध, मान आदि की वृत्तियों को विजय कर सके, मन को सदा शांत-उपशांत रख सके—वह 'क्षमावान' कहलाता है।

शास्त्र का लक्ष्य : श्रेयभावना :

शास्त्र की प्रेरकता में तप और क्षमा के साथ अहिंसा शब्द का भी उल्लेख किया गया है। अहिंसा की बात कह कर समग्र प्राणिजगत् के श्रेय एवं कल्याण की भावना का समावेश शास्त्र में कर दिया गया है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को 'भगवती' कहा है।[3] महान् श्रुतधर आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा को परब्रह्म कहा है।[4] इसका मतलब है—अहिंसा एक विराट् आध्यात्मिक चेतना है, समग्र प्राणिजगत के शिव एवं कल्याण का प्रतीक है। इसीलिए मैंने 'सत्यं' के साथ 'शिवं' की मर्यादा का उल्लेख किया है। अहिंसा हमारे 'शिवं' की साधना है। करुणा, कोमलता, सेवा, सहयोग, मैत्री और अभय—ये सब अहिंसा की फलश्रुतियाँ है। इस प्रकार हम शास्त्र की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं कि तप, क्षमा एवं अहिंसा के द्वारा जीवन को साधने वाला, अन्तरात्मा को परिष्कृत करने वाला जो तत्त्वज्ञान है, वह शास्त्र है।

शास्त्र का प्रयोजन :

शास्त्र की परिभाषा समझ लेने पर इसका प्रयोजन क्या है? यह भी स्पष्ट हो जाता है। भगवान् शास्त्र का प्रवचन किसलिए करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महावीर के प्रथम उत्तराधिकारी आर्य सुधर्मा ने कहा है—**'सव्व-जग-जीवरक्खण दयट्ठयाए**

---

१. उत्तराध्ययन ३।१
२. उत्तराध्ययन ३।८
३. प्रश्नव्याकरण, २।१
४. अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्।—स्वयंभू स्तोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवया पावयणं सुकहियं"[1] समस्त प्राणिजगत् की सुरक्षा एवं दया भावना से प्रेरित हो कर उसके कल्याण के लिए भगवान् ने उपदेश दिया।

परिभाषा और प्रयोजन कहीं भिन्न-भिन्न होते हैं और कहीं एक भी। यहाँ परिभाषा में प्रयोजन स्वतः निहित है। यों शास्त्र की परिभाषा में ही शास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट हो गया है, और अलग प्रयोजन बतला कर भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि शास्त्र का शुद्ध प्रयोजन विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है। शास्त्र के इस प्रयोजन को जैन भी मानते हैं, बौद्ध और वैदिक भी मानते हैं, ईसाई और मुसलमान भी यही बात कहते हैं—"ईसा और मुहम्मद साहब दुनियाँ की भलाई के लिए प्रेम और मुहब्बत का पैगाम लेकर आए।"

मैं समझता हूँ, शास्त्र का यह एक ऐसा व्यापक और विराट् उद्देश्य है, जिसे कोई भी तत्त्व-चिन्तक चुनौती नहीं दे सकता।

जैन श्रुतपरम्परा के महान् ज्योतिर्धर आचार्य हरिभद्र के समक्ष जब शास्त्र के प्रयोजन का प्रश्न आया, तो उन्होंने भी इसी बात को दुहराते हुए उत्तर दिया—

> **"मलिनस्य यथात्यन्तं जलं वस्त्रस्य शोधनम्।**
> **अन्तःकरणरत्नस्य तथा शास्त्रं विदुर्बुधाः॥"**[2]

जिस प्रकार जल वस्त्र की मलिनता का प्रक्षालन करके उसे उज्ज्वल बना देता है, वैसे ही शास्त्र भी मानव के अन्तःकरण में स्थित काम, क्रोध आदि कालुष्य का प्रक्षालन करके उसे पवित्र तथा निर्मल बना देता है। इस प्रकार भगवान् महावीर से लेकर एक हजार से कुछ अधिक वर्ष तक के चिन्तन में शास्त्र की यही एक सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत हुई—"जिसके द्वारा आत्म-परिबोध हो, आत्मा अहिंसा एवं संयम की साधना के द्वारा पवित्रता की ओर गति करे, उस तत्त्व-ज्ञान को शास्त्र कहा जाता है।"

शास्त्र के नाम पर :

मानवता के सार्वभौम चिन्तन एवं विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों के कारण आज यह प्रश्न खड़ा हो गया है कि इन शास्त्रों का क्या होगा? विज्ञान की बात का उत्तर क्या है, इन शास्त्रों के पास?

पहली बात मैं यह कहना चाहता हूँ, जैसी कि हमने शास्त्र की परिभाषा समझी है, वह स्वयं में एक विज्ञान है, सत्य है। तो क्या विज्ञान, विज्ञान को चुनौती दे सकता है? सत्य, सत्य को चुनौती दे सकता है? नहीं! एक सत्य दूसरे सत्य को काट नहीं सकता, यदि काटता है, तो वह सत्य ही नहीं है। फिर यह मानना चाहिए कि जिन शास्त्रों को हमारा मानवीय चिन्तन तथा प्रत्यक्ष विज्ञान चुनौती देता है, वे शास्त्र नहीं हो सकते, बल्कि वे शास्त्र के नाम पर पलने वाले ग्रन्थ या किताबें मात्र हैं। चाहे वे जैन आगम हैं, या श्रुति-स्मृतियाँ और पुराण हैं, चाहे पिटक हैं या बाइबिल एवं कुरान हैं। मैं पुराने या नये—किन्हीं भी विचारों की अन्ध प्रतिबद्धता स्वीकार नहीं करता। शास्त्र या श्रुति-स्मृति के नाम पर, आँख मूंदकर किसी चीज को सत्य स्वीकार कर लेना, मुझे सह्य नहीं है। मुझे ही क्या, किसी भी चिन्तक को सह्य नहीं है। और, फिर जो शास्त्र की सर्वमान्य व्यापक कसौटी है, उस पर वे खरे भी तो नहीं उतर रहे हैं।

जिन शास्त्रों ने धर्म के नाम पर 'पशुहिंसा'[3] एवं 'नर बलि' तक का प्रचार किया,[4]

---

१. प्रश्नव्याकरण, २।१-७

२. योग-बिन्दु प्रकरण, २।९

३. यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ —मनुस्मृति, ५।३९

४. वाल्मीकि रामायण (शुनः शेप) बालकाण्ड, सर्ग ६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानव-मानव के बीच में घृणा एवं उपेक्षा की दीवारें खड़ी कीं, क्या वह सत्यद्रष्टा ऋषियों का चिन्तन था? मानवजाति के ही एक अंग शूद्र के लिए कहा गया कि—वह जीवित श्मशान है,[1] उसकी छाया से भी बचना चाहिए।[2] तो क्या अखण्ड मानवीयता की अनुभूति वहाँ पर कुछ भी हुई होगी? जिस नारी ने मातृत्व का महान् गौरव प्राप्त करके समग्र मानव-जाति को अपने वात्सल्य से प्रीणित किया, उसके लिए यह कहना कि **"न स्त्रीभ्यः कश्चिदन्यद् वै पापीयस्तरमस्ति वै"**[3]—स्त्रियों से बढ़कर अन्य कोई दुष्ट नहीं है! क्या यह धर्म का अंग हो सकता है? वर्गसंघर्ष, जातिविद्वेष एवं साम्प्रदायिक घृणा के बीज बोने वाले ग्रन्थों ने जब मानव चेतना को खण्ड-खण्ड करके यह उद्‌घोष किया कि "अमुक सम्प्रदाय वाले का स्पर्श होने पर शुद्धि के लिए—**"सचैलो जलमाविशेत्"**[4] वस्त्र सहित पानी में डुबकी लगा लेनी चाहिए, तब क्या उनमें कहीं आत्म-परिबोध की झलक थी?

मैंने बताया कि ऋषि वह है, जो सत्य का साक्षात्‌द्रष्टा एवं चिन्तक है, प्राणिमात्र के प्रति जो विराट् आध्यात्मिक चेतना की अनुभूति कर रहा है—क्या उस ऋषि या श्रमण के मुख से कभी ऐसी वाणी फूट सकती है? कभी नहीं! वेद, आगम और पिटक जहाँ एक ओर मैत्री का पवित्र उद्‌घोष कर रहे हैं, क्या उन्हीं के नाम पर, उन्हीं द्रष्टा ऋषि और मुनियों के मुख से मानव-विद्वेष की बात कहलाना शास्त्र का गौरव है?

शास्त्रों के नाम पर जहाँ एक ओर ऐसी बेतुकी बातें कही गई, वहाँ दूसरी ओर भूगोल-खगोल के सम्बन्ध में भी बड़ी विचित्र, अनर्गल एवं असम्बद्ध कल्पनाएँ खड़ी की गई हैं। पृथ्वी, समुद्र, सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में इतनी मनोमोहक, किन्तु प्रत्यक्षबाधित बातें लिखी गई हैं कि जिनका आज के अनुसन्धानों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं मानता हूँ कि इस प्रकार की कुछ धारणाएँ उस युग में व्यापक रूप से प्रचलित रही होंगी, श्रुतानुश्रुत परम्परा या अनुमान के आधार पर जैन-समाज उन्हें एक-दूसरे तक पहुँचाता आया होगा। पर क्या उन लोकप्रचलित मिथ्या धारणाओं को शास्त्र का रूप दिया जा सकता है? शास्त्र का उनके साथ क्या सम्बन्ध है? मध्यकाल के किसी विद्वान् ने संस्कृत या प्राकृत ग्रन्थ के रूप में कुछ भी लिख दिया, या पुराने शास्त्रों में अपनी ओर से कुछ नया प्रक्षिप्त कर दिया और किसी कारण उसने वहाँ अपना नाम प्रकट नहीं किया, तो क्या वह शास्त्र हो गया? क्या उसे धर्म-शास्त्र मान लेना चाहिए? क्या उसे भगवान् या आप्त ऋषियों की वाणी मानकर शिरोधार्य कर लेना चाहिए?

उत्तरकालीन संकलन :

वैदिक साहित्य का इतिहास पढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तरकाल में कितने बड़े-बड़े धर्मग्रन्थों की रचनाएँ हुईं। स्मृतियाँ, पुराण, महाभारत और गीता, जिन्हें आज का धार्मिक मानस ऋषियों की पवित्र वाणी एवं भगवान् श्रीकृष्ण का उपदेश मान रहा है, वह कब, कैसे, किन परिस्थितियों में रचे गए, या परिवर्धित किए गए और रचनाकार एवं परिवर्धनकार ने भले ही विनम्र भाव से ऐसा किया हो, फलतः अपना नामोल्लेख भी नहीं किया हो, पर यह सब गलत हुआ है। मैं बताना चाहता हूँ कि जिस महाभारत को आज आप धर्मशास्त्र मानते हैं, और व्यासऋषि के मुख से निःसृत, गणपति द्वारा संकलित मानते हैं, वह प्रारम्भ में केवल छोटा-सा इतिहास ग्रन्थ था, जिसमें पांडवों

---

१. वसिष्ठ धर्मसूत्र ४।३

२. यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिरोहति।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुध्यति॥
—अत्रि० २८८-२८९, याज्ञ० २।३० (मिताक्षरा में उद्‌धृत)

३. महा० अनु० ३८।१२

४. बौद्धान् पाशुपतांश्चैव लोकायतिकनास्तिकान्।
विकर्मस्थान् द्विजान् स्पृष्टवा सचैलो जलमाविशेत्॥ ——स्मृतिचन्द्रिका, पृ० ११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की विजय का वर्णन होने से वह 'जय' नाम से प्रख्यात था। जब इसका दूसरा संस्करण ई० पू० १७६ के पूर्व तैयार हुआ, तो उसका नाम भारत रखा गया, और बहुत समय बाद प्रक्षिप्त-अंशों की वृद्धि होते-होते वह महाभारत बन गया।[1] आज की गीता का समूचा पाठ, क्या सचमुच में ही कुरुक्षेत्र में अर्जुन को दिया गया श्रीकृष्ण का उपदेश है, या बाद के किसी विद्वान् की परिवर्द्धित रचना या संकलन है? मनुस्मृति जो हिन्दुओं का मानव-धर्मशास्त्र कहलाता है, अपने आज के रूप में किस मनु की वाणी है? किसने उसे बनाया? ये तथ्य आज इतिहास से छिपे नहीं रहे हैं।[2]

मैं इन धर्मग्रन्थों का, जिनमें काफी अच्छा अंश जीवन निर्माण का भी है, किसी साम्प्रदायिक दृष्टि से विरोध नहीं कर रहा हूँ; किन्तु यह बताना चाहता हूँ कि मध्यकाल में जिस किसी विद्वान् ने, जो कुछ संस्कृत में लिख दिया या उसे कहीं प्रक्षिप्त कर दिया, उसे हम धर्मशास्त्र मानकर उसके खूंटे से अपनी बुद्धि को बाँध लें, यह उचित नहीं। उन ग्रन्थों में जो विशिष्ट चिन्तन एवं दर्शन है, समग्र मानव जाति के कल्याण का जो संदेश है, उसका मैं बहुत आदर करता हूँ, और इसीलिए उनका स्वाध्याय व प्रवचन भी करता हूँ। किन्तु, इस सम्बन्ध में इस वैचारिक प्रतिबद्धता को मैं उचित नहीं समझता कि उनमें जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है।

उत्तरकाल में आगमों की संकलना :

मैं सत्य के सम्बन्ध में किसी विशेष चिन्तनधारा के प्रति कभी प्रतिबद्ध नहीं रहा, सदा उन्मुक्त एवं स्वतन्त्र चिन्तन का पक्षपाती रहा हूँ, इसलिए जो बात वैदिक ग्रन्थों के सम्बन्ध में कह सकता हूँ, वह जैन ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी कहते हुए मुझे कोई संकोच नहीं है।

इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते मैं इस तथ्य को मानता हूँ कि प्रत्येक धर्म परम्परा में समय-समय पर परिवर्तन होते आए हैं, सही के साथ कुछ गलत विचार भी आए हैं और यथावसर उनका परिष्कार भी हुआ है। इसी दिशा में जैन आगमों की मान्यता के सम्बन्ध में मतभेदों की एक लम्बी परम्परा भी मेरे समक्ष खड़ी है। उसमें कब, क्या, कितने परिवर्तन हुए, कितना स्वीकारा गया और कितना नकारा गया, इसका भी कुछ इतिहास हमारे सामने आज विद्यमान है।

नन्दी सूत्र, जिसे कि आप आगम मानते हैं और भगवान् के कहे हुए शास्त्रों की कोटि में गिनते हैं, वह भगवान् महावीर से काफी समय बाद की संकलना है। उसके लेखक या संकलनकर्ता आचार्य देववाचक थे। भगवान् महावीर और आचार्य देववाचक के बीच के सुदीर्घ काल में, देश में कितने बड़े-बड़े परिवर्तन आये, कितने भयंकर दुर्भिक्ष पड़े, राजसत्ता में कितनी क्रांतियाँ और परिवर्तन हुए, धार्मिक परम्पराओं में कितनी तेजी से परिवर्तन, परिवर्धन एवं संशोधन हुए, इसकी एक लम्बी कहानी है। किन्तु हम उस एक हजार वर्ष पश्चात् संकलित सूत्र को और उसमें उल्लिखित सभी शास्त्रों को भगवान् महावीर की वाणी स्वीकार करते हैं। यह भी माना जाता है कि उपांगों की संकलना महावीर के बहुत बाद में हुई, और प्रज्ञापना जैसे विशाल ग्रन्थ के रचयिता भी श्यामाचार्य के नाम से सुविश्रुत विद्वान् आचार्य भगवान् महावीर के बहुत बाद हुए हैं। दशवैकालिक और अनुयोग द्वार सूत्र भी क्रमशः आचार्य शय्यंभव और आर्यरक्षित की रचना सिद्ध हो चुके हैं। यद्यपि

---

१. (क) दिग्विजय पर्व, संभवतः १७६ ई० पू० से पहले का है। —भा० इ० रू० पृ० १००३
(ख) महाभारत का वर्तमान संस्करण सातवाहन युग में तैयार हुआ।
(ई० पू०-१ ई० १ तक) भा० इ० रू० पृ० १००३

२. मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति सातवाहन युग की कृति है।
—भारतीय इतिहास की रूपरेखा (जयचन्द्र विद्यालंकार) भा०-२, पृ० १००१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन आगमों में बहुत कुछ अंश जीवनस्पर्शी है, पर भगवान् महावीर से उनका सीधा सम्बन्ध नहीं है, यह निश्चित है।

मेरे बहुत से साथी इन उत्तरकालीन संकलनाओं को इसलिए प्रमाण मानते हैं कि इनका नामोल्लेख अंग साहित्य में हुआ है और अंग सूत्रों का सीधा सम्बन्ध महावीर से जुड़ा हुआ है। मैं समझता हूँ कि यह तर्क सत्य स्थिति को अपदस्थ नहीं कर सकता, हकीकत को बदल नहीं सकता। भगवती जैसे विशालकाय अंग सूत्र में महावीर के मुख से यह कहलाना कि—'जहा पण्णवणाए'—जैसा प्रज्ञापना में कहा है, यह किस इतिहास से संगत है? प्रज्ञापना, रायपसेणी और उववाई के उद्धरण भगवान् महावीर अपने मुख से कैसे दे सकते हैं? जबकि, उनकी संकलना बहुत बाद में हुई है।

इस तर्क का समाधान यह दिया जाता है कि बाद के लेखकों व आचार्यों ने अधिक लेखन से बचने के लिए संक्षिप्त रुचि के कारण स्थान-स्थान पर ऐसा उल्लेख कर दिया है। जब यह मान लिया है कि अंग आगमों में भी आचार्यों का अंगुलीस्पर्श हुआ है, उन्होंने संक्षिप्तीकरण किया है, तो यह क्यों नहीं माना जा सकता कि कहीं-कहीं कुछ मूल से बढ़ भी गया है, विस्तार भी हो गया है! मैं नहीं कहता कि उन्होंने कुछ ऐसा किसी गलत भावना से किया है, भले ही यह सब कुछ पवित्र प्रभुभक्ति एवं श्रुत महत्ता की भावना से ही हुआ हो, पर यह सत्य है कि जब घटाना संभव है, तो बढ़ाना भी संभव है। और, इस संभावना के साक्ष्य रूप प्रमाण भी आज उपलब्ध हो रहे हैं।

भूगोल-खगोल : महावीर की वाणी नहीं :

यह सर्व सम्मत तथ्य आज मान लिया गया है कि मौखिक परम्परा एवं स्मृति-दौर्बल्य के कारण बहुत-सा श्रुत विलुप्त हो गया है, तो यह क्यों नहीं माना जा सकता कि सर्वसाधारण में प्रचलित उस युग की कुछ मान्यताएँ भी आगमों के साथ संकलित कर दी गई हैं! मेरी यह निश्चित धारणा है कि ऐसा होना सम्भव है, और वह हुआ भी है।

उस युग में भूगोल, खगोल, ग्रह, नक्षत्र, नदी, पर्वत आदि के सम्बन्ध में कुछ मान्यताएँ आम प्रचलित थीं, कुछ बातें तो भारत के बाहरी क्षेत्रों में भी अर्थात् इस्लाम और ईसाई धर्मग्रन्थों में भी इधर-उधर के सांस्कृतिक रूपान्तर के साथ ज्यों की त्यों उल्लिखित हुई है, जो इस बात का प्रमाण है कि ये धारणाएँ सर्वसामान्य थीं। जो जैनों ने भी ली, पुराणकारों ने भी ली और दूसरों ने भी! उस युग में उनके परीक्षण का कोई साधन नहीं था, इसलिए उन्हें सत्य ही मान लिया गया और वे शास्त्रों की पंक्तियों के साथ चिपट गई! पर बाद के उस वर्णन को भगवान् महावीर के नाम पर चलाना क्या उचित है? जिस चन्द्रलोक के धरातल के चित्र आज समूचे संसार के हाथों में पहुँच गए हैं और अपोलो-८ के यात्रियों ने आँखों से देखकर बता दिया है कि वहाँ पहाड़ है, ज्वालामुखी के गर्त हैं, श्री-हीन उजड़े भूखण्ड हैं, उस चन्द्रमा के लिए कुछ पुराने धर्मग्रन्थों की दुहाई देकर आज भी यह मानना कि वहाँ सिंह, हाथी, बैल और घोड़ों के रूप में हजरों देवता हैं, और वे सब मिल कर चन्द्र विमान को वहन कर रहे हैं;[1] कितना असंगत एवं कितना अबौद्धिक है? क्या यह महावीर की वाणी, एक सर्वज्ञ की बानी हो सकती है? जिन गंगा आदि नदियों की इंच-इंच भूमि आज नाप ली गई है, उन नदियों को आज भी लाखों मील के लम्बे-चौड़े विस्तार वाली बताना, क्या यह महावीर की सर्वज्ञता एवं भगवत्ता का उपहास नहीं है?

आज हमें नये सिरे से चिंतन करना चाहिए। यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर सत्य का सही मूल्यांकन करना चाहिए। दूध और पानी की तरह यह अलग-अलग कर देना चाहिए कि भगवान् की वाणी क्या है? महावीर के वचन क्या हैं? एवं, उससे

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ज्योतिषचक्राधिकार, चन्द्रऋद्धि वर्णन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरकालीन विद्वानों की संकलना क्या है? यह साहस आज करना होगा, कतराने और सकुचाने से सत्य पर पर्दा नहीं डाला जा सकेगा। आज का तर्क प्रधान युग निर्णायक उत्तर माँगता है और यह उत्तर धर्मशास्त्रों के समस्त प्रतिनिधियों को देना ही होगा।

मैं समझता हूँ कि आज के युग में भी आप के मन में तथाकथित शास्त्रों के अक्षर-अक्षर को सत्य मानने का व्यामोह है, तो महावीर की सर्वज्ञता को अप्रमाणित होने से आप कैसे बचा सकेंगे? यदि महावीर की सर्वज्ञता को प्रमाणित रखना है, तो फिर यह विवेकपूर्वक सिद्ध करना ही होगा कि महावीर की वाणी क्या है? शास्त्र का यथार्थ स्वरूप क्या है? और, वह शास्त्र कौन-सा है? अन्यथा आनेवाली पीढ़ी कहेगी कि महावीर को भूगोल-खगोल के सम्बन्ध में कुछ भी अता-पता नहीं था, उन्हें स्कूल के एक साधारण विद्यार्थी जितनी भी जानकारी नहीं थी!

शास्त्रों की छंटनी :

यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है, हम कौन होते हैं, जो महावीर की वाणी की छँटनी कर सकें? हमें क्या अधिकार है कि शास्त्रों का फैसला कर सकें कि कौन शास्त्र है और कौन नहीं?

उत्तर में निवेदन है, हम महावीर के उत्तराधिकारी हैं, भगवान् का गौरव हमारे अन्तर्मन में समाया हुआ है, भगवान् की अपभ्राजना हम किसी भी मूल्य पर सहन नहीं कर सकते। हम त्रिकाल में भी यह नहीं मान सकते कि भगवान् ने असत्य प्ररूपणा की है। अतः जो आज प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित हो रहा है, या हो सकता है, वह भगवान् का वचन नहीं हो सकता। इसलिए हमें पूरा अधिकार है कि यदि कोई भगवान् को, भगवान् की वाणी को चुनौती देता है, तो हम यथार्थ सत्य के आधार पर उसका प्रतिरोध करें, उस चुनौती का स्पष्ट उत्तर दें, कि सचाई क्या है?

विज्ञान ने हमारे शास्त्रों की प्रामाणिकता को चुनौती दी है। हमारे कुछ बुजुर्ग कहे जाने वाले विद्वान् मुनिराज या श्रावक जिस ढंग से उस चुनौती का उत्तर दे रहे हैं, वह तर्क-संगत नहीं है, उनका कहना है कि "असली चन्द्रमा बहुत दूर है।" कुछ यह भी कहते हैं कि "यह सब झूठ है. वैज्ञानिकों का, नास्तिकों का षड़यन्त्र है, केवल धर्म की निन्दा करने के लिए।" मैं समझता हूँ, इस प्रकार के उत्तर निरे मजाक के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जिस हकीकत को प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों के वैज्ञानिक भी स्वीकार कर रहे हैं, बाल की खाल उतारने वाले तार्किक भी आदरपूर्वक मान्य कर रहे हैं, धरती पर रह रहे लाखों लोगों ने भी टेलिवीजन के माध्यम से चन्द्र तक आने-जाने का दृश्य देखा है, उस प्रत्यक्ष-सत्य को हम यों झुठला नहीं सकते। और न नकली-असली चन्द्रमा बताने से ही कोई बात का उत्तर हो सकता है। प्रतिरोध करने का यह तरीका गलत है, उपहासास्पद है। शास्त्रों की गरिमा को, अब इस हिलती हुई दीवार के सहारे अधिक दिन टिकाया नहीं जा सकता।

मैं पूछता हूँ, आपको शास्त्रों की परख करने का अधिकार क्यों नहीं है? कभी एक परम्परा थी, जो चौरासी आगम मानती थी, ग्रन्थों में उसके प्रमाण विद्यमान हैं। फिर एक परम्परा खड़ी हुई, जो चौरासी में से छँटनी करती-करती पैंतालीस तक आकर ठहरी। भगवान् महावीर के लगभग दो हजार वर्ष बाद फिर एक परम्परा ने जन्म लिया, जिसने पैंतालीस को भी अमान्य ठहराया और बत्तीस आगम माने। मैं पूछता हूँ— धर्मवीर लोंकाशाह ने, पैंतालीस आगमों में से इकत्तीस या बत्तीस छाँट लिए, क्या वे कोई बहुत बड़े श्रुतधर आचार्य थे? क्या उन्हें कोई विशिष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ था? क्या उन्हें कोई ऐसी देववाणी हुई थी, अमुक शास्त्र, शास्त्र है, और अमुक नहीं। फिर उन्होंने जो यह निर्णय किया और जिसे आज आप मान रहे हैं, वह किस आधार पर था? सिर्फ अपनी प्रज्ञा एवं दृष्टि से ही तो यह छँटनी उन्होंने की थी! तो आज क्या वह प्रज्ञा और वह दृष्टि लुप्त हो गई है? क्या आज किसी विद्वान् में वह निर्णायक शक्ति नहीं रही?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या साहस नहीं है ? अथवा वे अपनी श्रद्धा-प्रतिष्ठा के भय से भगवद्वाणी का यह उपहास देखते हुए भी मौन हैं ? मैं साहस के साथ कह देना चाहता हूँ कि आज वह निर्णायक घड़ी आ पहुँची है कि 'हाँ' या 'ना' में स्पष्ट निर्णय करना होगा। पौराणिक प्रतिबद्धता एवं शाब्दिक व्यामोह को तोड़ना होगा, और तर्क की कसौटी पर परख कर यह निर्णय करना ही होगा कि भगवद्वाणी क्या है ? और, उसके बाद का अंश क्या है ?

विचार-प्रतिबद्धता को तोड़िए :

किसी भी परम्परा के पास ग्रन्थ या शास्त्र कम-अधिक होने से जीवन के आध्यात्मिक विकास में कोई अन्तर आने वाला नहीं है। यदि शास्त्र कम रह गए, तो भी आपका आध्यात्मिक जीवन बहुत उँचा हो सकता है, विकसित हो सकता है, और शास्त्र का अम्बार लगा देने पर भी आप बहुत पिछड़े हुए रह सकते हैं। आध्यात्मिक विकास के लिए जिस चिंतन और दृष्टि की आवश्यकता है, वह तो अन्तर से जागृत होती है। जिसकी दृष्टि सत्य के प्रति जितनी आग्रह रहित एवं उन्मुक्त होगी, जिसका चिंतन जितना आत्ममुखीन होगा, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक विकास कर सकेगा।

मैंने देखा है, अनुभव किया है—ग्रन्थों एवं शास्त्रों को लेकर हमारे मानस में एक प्रकार की वासना, एक प्रकार का आग्रह, जिसे हठाग्रह ही कहना चाहिए, पैदा हो गया है। आचार्य शंकर ने विवेक चूड़ामणि में कहा है—देह वासना एवं लोकवासना के समान शास्त्र-वासना भी यथार्थ ज्ञान की प्रतिबन्धक है। आचार्य हेमचन्द्र ने इसे **"दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेदो सतामपि"**,—कहकर दृष्टिरागी के लिए सत्य की अनुसंधित्सा को बहुत दुर्लभ बताया है।

हम अनेकान्त दृष्टि और स्याद्वाद विचार पद्धति की बात-बात पर जो दुहाई देते हैं, वह आज के राजनीतिकों की तरह केवल नारा नहीं होना चाहिए, हमारी दृष्टि सत्य-दृष्टि बननी चाहिए, ताकि हम स्वतंत्र अप्रतिबद्ध प्रज्ञा से कुछ सोच सकें। जब तक दृष्टि पर से अंधश्रद्धा का चश्मा नहीं उतरेगा, जब तक पूर्वाग्रहों के खूँटे से हमारा मानस बंधा रहेगा. तब तक हम कोई भी सही निर्णय नहीं कर सकेंगे। इसलिए युग की वर्तमान परिस्थितियों का तकाजा है कि हम पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर नये सिरे से सोचें ! प्रज्ञा की कसौटी हमारे पास है, और यह कसौटी भगवान् महावीर एवं गणधर गौतम ने, जो स्वयं सत्य के साक्षात्द्रष्टा एवं उपासक थे, बतलाई है—**"पन्ना समिक्खए धम्मं"** ?[1] प्रज्ञा ही धर्म की, सत्य की समीक्षा कर सकती है, उसी से तत्त्व का निर्णय किया जा सकता है।

शास्त्र-स्वर्ण की परख :

प्रज्ञा एक कसौटी है, जिस पर शास्त्र रूप स्वर्ण की परख की जा सकती है। और, वह परख होनी ही चाहिए। हममें से बहुत से साथी हैं, जो कतराते हैं कि कहीं परीक्षा करने से हमारा सोना पीतल सिद्ध न हो जाए ! मैं यह कहना चाहता हूँ कि इसमें कतराने की कौन-सी बात है ? यदि सोना वस्तुतः सोना है, तो वह सोना ही रहेगा, और यदि पीतल है, तो उस पर सोने का भ्रम आप कब तक पालते रहेंगे ? सोने और पीतल को अलग-अलग होने दीजिए—इसी में आप की प्रज्ञा की कसौटी का चमत्कार है।

जनागमों के महान् टीकाकार आचार्य अभयदेव ने भगवती की टीका की पीठिका में एक बहुत बड़ी बात कही है, जो हमारे लिए संपूर्ण भगवद्-वाणी की कसौटी हो सकती है।

प्रश्न है कि आप्त कौन है ? और उनकी वाणी क्या है ? आप्त भगवान् क्या उपदेश करते हैं ?

उत्तर में कहा गया है—जो मोक्ष का अंग है, मुक्ति का साधन है, आप्त भगवान्

---

१. उत्तराध्ययन, २३।२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी यथार्थ सत्य का उपदेश करते हैं। आत्मा की मुक्ति के साथ जिसका प्रत्यक्ष या पारम्परिक कोई सम्बन्ध नहीं है, उसका उपदेश भगवान् कभी नहीं करते। यदि उसका भी उपदेश करते हैं, तो उनकी आप्तता में दोष आता है।[1]

यह एक बहुत सच्ची कसौटी है, जो आचार्य अभयदेव ने हमारे समक्ष प्रस्तुत की है। इससे भी पूर्व लगभग चौथी-पाँचवीं शताब्दी के महान् तार्किक, जैन तत्त्वज्ञान को दर्शन का रूप देनेवाले आचार्य सिद्धसेन ने भी शास्त्र की एक कसौटी निश्चित करते हुए कहा था—

> **"आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।**
> **तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥"**[2]

"जो वीतराग—आप्त पुरुषों के द्वारा जाना परखा गया है, जो किसी अन्य वचन के द्वारा अपदस्थ—हीन नहीं किया जा सकता और जो तर्क तथा प्रमाणों से खण्डित नहीं हो सकने वाले सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो प्राणिमात्र के कल्याण के निमित्त से सार्व अर्थात् सार्वजनीन—सर्वजन हितकारी होता है एवं अध्यात्म साधना के विरुद्ध जाने वाली विचार सरणियों का निरोध करता है—वही सच्चा शास्त्र है।"

तार्किक आचार्य ने शास्त्र की जो कसौटी की है, वह आज भी अमान्य नहीं की जा सकती। वैदिक परम्परा के प्रथम दार्शनिक कपिल एवं महान् तार्किक गौतम ने भी जब शब्द को प्रमाण कोटि में माना, तो पूछा गया—शब्द प्रमाण क्या है? तो कहा—'आप्त का उपदेश शब्द प्रमाण है!' आप्त कौन है? तत्त्व का यथार्थ उपदेष्टा आप्त है।[3] जिसके वचन में पूर्वापर विरोध, असंगति-विसंगति नहीं होती, और जो वचन प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के विरुद्ध नहीं जाता, खण्डित नहीं होता—वही आप्त-वचन है। आचार्य के उक्त कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि किसका, क्या वचन मान्य हो सकता है, और क्या नहीं। जो वचन यथार्थ नहीं है, सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है, वह भले कितना ही विराट् एवं विशाल ग्रन्थ क्यों न हो, उसे 'आप्त-वचन' कहने से इन्कार कर दीजिए। इसी में आप्त की, और आपकी प्रामाणिकता है, प्रतिष्ठा है।

हम स्वयं निर्णय करें :

तर्कशास्त्र की ये सूक्ष्म बातें मैंने आपको इसलिए बताई है कि हम अपनी प्रज्ञा को जागृत करें और स्वयं परखें कि वस्तुतः शास्त्र क्या है, उसका प्रयोजन क्या है? और फिर यह भी निर्णय करें कि जो अपनी परिभाषा एवं प्रयोजन के अनुकूल नहीं है, वह शास्त्र, शास्त्र नहीं है। उसे और कुछ भी कह सकते हैं—ग्रन्थ, रचना, कृति कुछ भी कहिए, पर हर किसी ग्रन्थ को भगवद्-वाणी या आप्त-वचन नहीं कह सकते।

शास्त्र की एक कसौटी, जो उत्तराध्ययन सूत्र से मैंने आपको बतलाई है, जिसमें कहा गया है—तप, क्षमा एवं अहिंसा की प्रेरणा जगाकर आत्मदृष्टि को जागृत करने वाला शास्त्र है। यह इतनी श्रेष्ठ और सही कसौटी है कि इसके आधार पर भी यदि हम वर्तमान में शास्त्रों का निर्णय करें, तो बहुत ही सही दिशा प्राप्त कर सकते हैं।

बहुत से जिज्ञासुओं और मेरे साथी मुनियों के समक्ष मैंने जब भी कभी अपने ये विचार

---

१. नहि आप्तः साक्षाद् पारंपर्येण वा यत्र मोक्षाङ्गं तद् प्रतिपादयितुमुत्सहते अनाप्तत्व-प्रसंगात्।
—आचार्य अभयदेव, भगवती वृत्ति, १।१

२. न्यायावतार, ९

३. आप्तोपदेशः शब्दः—सांख्यदर्शन १।१०१
—न्यायदर्शन १।१।७
आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा।—यथादृष्टस्यार्थस्य
चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा....।—न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तर्क उपस्थित किए हैं, तो वे कतराने-से लगते हैं और कहते हैं, "बात तो ठीक है, पर यह कैसे कहें कि अमुक आगम को हम शास्त्र नहीं मानते ! इससे समाज में बहुत हलचल मच जाएगी, श्रावकों की श्रद्धा खत्म हो जाएगी, धर्म का ह्रास हो जाएगा।" मैं जब उनकी उक्त रुढ़िचुस्त एवं भीरुता भरी बातें सुनता हूँ, तो मन जरा झुंझला उठता है—यह क्या कायरता है ? यह कैसी दुर्बल मनोवृत्ति है हमारे में ? हम समझते हैं कि बात सही है, पर कह नहीं सकते। चूँकि लोग क्या कहेंगे ? मैं समझता हूँ—इसी दब्बू मनोवृत्ति ने हमारे आदर्शों को गिराया है, हमारी संस्कृति का पतन किया है। यही मनोवृत्ति वर्तमान में पैदा हुई शास्त्रों के प्रति अनास्था एवं धर्म विरोधी भावना की जिम्मेदार है।

भगवद्-भक्ति या शास्त्र-मोह :

बहुत वर्ष पहले की बात है, मैं देहली में था। वहाँ के लाला उमरावमलजी एक बहुत अच्छे शास्त्रज्ञ, साथ ही तर्कशील श्रावक थे। उनके साथ प्रायः अनेक शास्त्रीय प्रश्नों पर चर्चा चलती रहती थी। एक बार प्रसंग चलने पर मैंने कहा—"लालाजी ! मैं कुछ शास्त्रों के सम्बन्ध में परम्परा से भिन्न दृष्टि रखता हूँ ! मैं यह नहीं मानता कि इन शास्त्रों का अक्षर-अक्षर भगवान् ने कहा है। शास्त्रों में कुछ अंश ऐसे भी हैं, जो भगवान् की सर्वज्ञता के साक्षी नहीं है। भूगोल-खगोल को ही ले लीजिए ! यह सब क्या है ?"

मैंने यह कहा तो लालाजी एकदम चौंके और बोले—"महाराज ! आपने यह बात कैसे कही ? ऐसा कैसे हो सकता है ?"

इस पर मैंने उनके समक्ष शास्त्रों के कुछ स्थल रखे, साथ ही लम्बी चर्चा की, और फिर उनसे पूछा—"क्या ये सब बातें एक सर्वज्ञ भगवान् की कही हुई हो सकती हैं ? हो सकती हैं, तो इनमें परस्पर असंगतता एवं विरोध क्यों है ? सर्वज्ञ की वाणी कभी असंगत नहीं हो सकती, और यदि असंगत है, तो वह सर्वज्ञ की वाणी नहीं हो सकती।"

लालाजी बुजुर्ग होते हुए भी जड़ मस्तिष्क नहीं थे, श्रद्धा प्रधान होते हुए भी तर्कशून्य नहीं थे। उन्होंने लम्बी तत्त्वचर्चा के बाद अन्त में मुक्त मन से कहा—"महाराज ! इन चाँद-सूरज के शास्त्रों से भगवान् का सम्बन्ध जितना जल्दी तोड़ा जाए, उतना ही अच्छा है। वर्ना इन शास्त्रों की श्रद्धा बचाने गए, तो कहीं भगवान् की श्रद्धा से ही हाथ न धो बैठें !"

मैं आपसे भी यही पूछना चाहता हूँ कि आप इन चंद्र, सूर्य, सागर एवं सुमेरु की चर्चा करने वाले शास्त्रों को महत्त्व देना चाहते हैं या भगवान् को ? आपके मन में भगवद्-भक्ति का उद्रेक है या शास्त्र का मोह ?

आप कहेंगे, शास्त्र नहीं रहा, तो भगवान् का क्या पता चलेगा ? शास्त्र ही तो भगवान् का ज्ञान कराते हैं।

बात ठीक है, शास्त्रों से ही भगवान् का ज्ञान होता है। परन्तु, कौन से शास्त्रों से ? हम आत्मा हैं और भगवान् परमात्मा हैं। आत्मा परमात्मा में क्या अन्तर है ? अशुद्ध और शुद्ध स्थिति का ही तो अन्तर है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही भगवान् है, भगवान् का स्वरूप है। इस प्रकार भगवान् का स्वरूप आत्मस्वरूप से भिन्न नहीं है। और, जो शास्त्र आत्मस्वरूप का ज्ञान कराने वाला है, आत्मा से परमात्मा होने का मार्ग बनाने वाला है, जीवन की पवित्रता और श्रेष्ठता का पथ दिखाने वाला है, वास्तव में वही धर्मशास्त्र है, और उसी धर्मशास्त्र की हमें आवश्यकता है। किन्तु इसके विपरीत जो शास्त्र आत्मस्वरूप की जगह आत्म-विभ्रम की विरूपता खड़ी कर देता है, हमें अन्तर्मुख नहीं, अपितु बहिर्मुख बनाता है, उसे शास्त्र की कोटि में रखने से क्या लाभ है ? वह तो उलटा हमें भगवत् श्रद्धा से दूर खदेड़ता है, मन को शंकाकुल बनाता है, और प्रबुद्ध लोगों को हमारे शास्त्रों पर, हमारे भगवान् पर अँगुली उठाने का मौका देता है। आप तटस्थ दृष्टि से देखिए कि ये भूगोल-खगोल सम्बन्धी चर्चाएँ, ये चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत और समुद्र आदि के लम्बे-चौड़े वर्णन करने वाले शास्त्र हमें आत्मा को बन्धन मुक्त करने के लिए क्या प्रेरणा देते हैं ? आत्मविकास का कौन-सा मार्ग दिखाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं ? इन वर्णनों से हमें तप, त्याग, क्षमा, अहिंसा आदि का कौन-सा उपदेश प्राप्त होता है ? जिनका हमारी आध्यात्मिक चेतना से कोई सम्बन्ध नहीं, आत्म-साधना से जिनका कोई वास्ता ही नहीं, हम उन्हें शास्त्र मानें तो क्यों ? किस आधार पर ?

मैंने प्रारम्भ में एक बात कही थी कि जैन एवं वैदिक-परम्परा के अनेक ग्रन्थों का निर्माण या नवीन संस्करण ईसा पूर्व की पहली शताब्दी से लेकर ईसा पश्चात् चौथी-पाँचवीं शताब्दी तक होता रहा है। उस युग में जो भी प्राकृत या संस्कृत में लिखा गया, उसे धर्म-शास्त्र की सूची में चढ़ा दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मानव की स्वतन्त्र तर्कणा एक तरह से कुण्ठित हो गई और श्रद्धावनत होकर मानव ने हर किसी ग्रन्थ को शास्त्र एवं आप्त-वचन मान लिया। भारत की कोई भी परंपरा इस बौद्धिक विकृति से मुक्त नहीं रह सकी। श्रद्धाधिक्य के कारण, हो सकता है, प्रारम्भ में यह भूल कोई भूल प्रतीत न हुई हो, पर आज इस भूल के भयंकर परिणाम हमारे समक्ष आ रहे हैं। भारत की धार्मिक प्रजा उन तथाकथित धर्म-शास्त्रों की जकड़ में इस प्रकार प्रतिबद्ध हो गई है कि न कुछ पकड़ते बनता है और न कुछ छोड़ते बनता है।

मेरा यह कथन शास्त्र की अवहेलना या अपभ्राजना नहीं है, किन्तु एक सत्य हकीकत है, जिसे जानकर, समझ कर हम शास्त्र के नाम पर अन्धी शास्त्र प्रतिबद्धता से मुक्त हो जाएँ। जैसा मैंने कहा—शास्त्र तो सत्य का उद्घाटक होता है। असत्य धारणाओं का संकलन, शास्त्र नहीं होता। मैं तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की वाणी को पवित्र मानता हूँ, महाश्रमण महावीर की वाणी को आत्म-स्पर्शी मानता हूँ—इसलिए कि वह सत्य है, ध्रुव है। किन्तु उनके नाम पर रचे गये ग्रन्थों को, जिनमें कि अध्यात्म चेतना का कुछ भी स्पर्श नहीं है, सत्यं, शिवं की कुछ भी अनुभूति नहीं है, मैं उन्हें शास्त्र नहीं मानता।

कुछ मित्र मुझे अर्ध-नास्तिक कहते हैं, मिथ्यात्वी भी कहते हैं। मैं कहता हूँ, अर्ध-नास्तिक का क्या मतलब ? पूरा ही नास्तिक क्यों न कह देते ? यदि सत्य का उद्घाटन करना, उसे मुक्त मन से स्वीकार कर लेना, नास्तिकता है, तो वह नास्तिकता अभिशाप नहीं, वरदान है।

मेरा मन महावीर के प्रति अटूट श्रद्धा लिए हुए है, सत्यद्रष्टा ऋषियों के प्रति एक पवित्र भावना लिए हुए है, और यह श्रद्धा ज्यों-ज्यों चिंतन की गहराई का स्पर्श करती है, त्यों-त्यों अधिकाधिक प्रबल, तथा दृढ़ होती जाती है। मैं आज भी उस परम ज्योति को अपने अन्तरंग में देख रहा हूँ और उस पर मेरा मन सर्वतोभावेन समर्पित हो रहा है। भगवान् मेरे लिए ज्योति-स्तम्भ हैं, उनकी वाणी का प्रकाश मेरे जीवन के कण-कण में समाता जा रहा है, किन्तु भगवान् की वाणी क्या है, और क्या नहीं, यह मैं अपने अन्तर्विवेक के प्रकाश में स्पष्ट देखकर चल रहा हूँ। भगवान् की वाणी वह है, जो अन्तर् में सत्य श्रद्धा की ज्योति जगाती है, अन्तर् में सुप्त ईश्वरत्व को प्रबुद्ध करती है, हमारी अन्तश्चेतना को व्यापक एवं विराट् बनाती है। भगवद्वाणी की स्फुरणा आत्मा की गति-प्रगति से सम्बन्धित है, सूर्य, चन्द्र आदि की गति से नहीं। सोने, चाँदी के पहाड़ों की ऊँचाई-नीचाई से नहीं, नदी-नालों एवं समुद्रों की गहराई-लम्बाई से नहीं। ऋषियों की वाणी विश्वमैत्री एवं विराट् चेतना की प्रतिनिधि है, उसमें वर्गसंघर्ष, जातिविद्वेष एवं असत् कल्पनाओं के स्वर नहीं हो सकते। भगवान् की वाणी में जो शाश्वत सत्य का स्वर मुखरित हो रहा है, उसको कोई भी विज्ञान, कोई भी प्रयोग चुनौती नहीं दे सकता, कोई भी सत्य का शोधक उसकी अवहेलना नहीं कर सकता। किन्तु हम इस अज्ञान में भी न रहें कि भगवान् की वाणी के नाम पर, आप्त-वचनों के नाम पर, आज जो कुछ भी लिखा हुआ प्राप्त होता है, वह सब कुछ साक्षात् भगवान् की वाणी है, जो कुछ लिपिबद्ध है वह अक्षर-अक्षर भगवान् का ही कहा हुआ है। प्राकृत एवं अर्धमागधी के हर किसी ग्रन्थ पर महावीर की मुद्रा लगा देना, महावीर की भक्ति नहीं, अवहेलना है। यदि हम सच्चे श्रद्धालु हैं, भगवद्भक्त हैं, तो हमें इस अवहेलना से मुक्त होना चाहिए। और यह विवेक कर लेना चाहिए कि जो विचार, जो तथ्य, जो वाणी सिर्फ भौतिक जगत् के विश्लेषण एवं विवेचन से संबंधित है, साथ ही प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित भी है, वह भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की वाणी नहीं है, वह हमारा मान्य शास्त्र नहीं है। हाँ, वह आचार्यों द्वारा रचित या संकलित ग्रन्थ, काव्य या साहित्य कुछ भी हो सकता है, किन्तु शास्त्र नहीं।

मैं समझता हूँ, मेरी यह बात आपके हृदय में मुश्किल से उतरेगी। आप गहरा ऊहापोह करेंगे। कुछ तो, मुझे कुछ का कुछ भी कहेंगे। इसकी मुझे कुछ भी चिंता नहीं है। सत्य है कि आज के उलझे हुए प्रश्नों का समाधान इसी दृष्टि से हो सकता है। मैंने अपने चिन्तन-मनन से समाधान पाया है, और अनेक जिज्ञासुओं को भी दिया है, मैं तो मानता हूँ कि इसी समाधान के कारण आज भी मेरे मन में महावीर एवं अन्य ऋषि-मुनियों के प्रति श्रद्धा का निर्मल स्रोत उमड़ रहा है, मेरे जीवन का कण-कण आज भी सहज श्रद्धा के रस से आप्लावित हो रहा है। और मैं तो सोचता हूँ, मेरी यह स्थिति उन तथाकथित श्रद्धालुओं से अधिक अच्छी है, जिनके मन में तो ऐसे कितने ही प्रश्न सन्देह में उलझ रहे हैं, किन्तु वाणी में शास्त्र-श्रद्धा की धुंआधार गर्जना हो रही है। जिनके मन में केवल परम्परा के नाम पर ही कुछ समाधान हैं, जिनकी बुद्धि पर इतिहास की अज्ञानता के कारण विवेक-शून्य श्रद्धा का आवरण चढ़ा हुआ है, उनकी श्रद्धा कल टूट भी सकती है, और न भी टूटे तो कोई उसकी श्रेष्ठता मैं नहीं समझता। किन्तु विवेकपूर्वक जो श्रद्धा जगती है, चिन्तन से स्फुरित होकर जो ज्योति प्रकट होती है, उसीका अपने और जगत् के लिए कुछ मूल्य है। उस मूल्य की स्थापना आज नहीं, तो कल होगी, अवश्य ही होगी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शास्त्रों का सही अभिधान ही हमारे जीवन की पथ-दिशा प्रशस्त करता है। और, पर्याय क्रम से ये शास्त्र ही हमारे धर्म के आधार भी हैं, उसकी सही कसौटी भी है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org